

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 4 अध्याय 17: पृथु व पृथ्वी

21 September 2026



पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



जब अकाल उनकी प्रजा को जकड़ता है और पृथ्वी अपनी सम्पदा रोक लेती है, राजा पृथु अपना धनुष उठाते हैं — और भागती हुई देवी, अन्ततः घिर कर, उनके समक्ष अपना पक्ष रखने मुड़ती है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्जम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। पिछले अध्याय में, दिव्य वन्दीजनों ने नव-अभिषिक्त राजा पृथु की स्तुति की, और उन्होंने उनकी स्तुति विनम्रता से ग्रहण की। यह सप्तदश अध्याय उन्हें अपनी प्रजा की रक्षा का कठोर, व्यावहारिक कार्य उठाते दिखाता है। वे भूमि को बंजर तथा अपनी प्रजा को अकाल से मरता पाते हैं, और जानते

हैं कि स्वयं पृथ्वी देवी ने अपनी सम्पदा रोक ली है, प्रत्येक ओषधि तथा अन्न के बीज अपने भीतर बन्द कर लिए हैं। भूखों के लिए क्रुद्ध होकर, पृथु उसे विवश करने अपना धनुष उठाते हैं; और पृथ्वी, गोरूप में लोकों के पार भागती हुई, अन्ततः उनका सामना करने मुड़ती है, समर्पण करती है, और एक सुन्दर प्रार्थना अर्पित करती है — उनकी धार्मिकता स्वीकार करते हुए, यह कबूल करते हुए कि उसने अपने उपहार क्यों रोके, और यह वचन देते हुए कि साधन ठीक से मिलने पर वह अपनी सम्पदा फिर से प्रदान करेगी। यह एक शासक की भूखों के प्रति उग्र करुणा का, और पृथ्वी के विवेक का अध्याय है, जो अपना धन केवल बल को नहीं बल्कि उचित व्यवस्था को देती है।

अध्याय की जानकारी

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 4 (चतुर्थ स्कन्ध)
- अध्याय: 17 (सप्तदश अध्याय)
- अध्याय का शीर्षक: पृथ्वी पर पृथु का क्रोध तथा उसकी उनसे प्रार्थना
- मुख्य वक्ता: महर्षि मैत्रेय, विदुर को अपने उपदेश की निरन्तरता में (जिसमें पृथु तथा पृथ्वी देवी के वचन उद्धृत हैं)
- मुख्य श्रोता: विदुर
- मुख्य स्थल: अकाल से पीड़ित पृथु का राज्य
- केन्द्रीय विषय: अकाल, पृथ्वी पर पृथु का क्रोध, उसका गोरूप में पलायन, तथा उसकी प्रार्थना तथा समर्पण
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 4, अध्याय 17, श्लोक 1-36
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

पिछले अध्याय का सन्दर्भ

अध्याय 16 राजा पृथु की भविष्य-सूचक स्तुति थी, जिसे उन्होंने अभिमान के बजाय विनम्रता से ग्रहण किया। यह सप्तदश अध्याय स्तुति से कर्म की ओर मुड़ता है: पृथु, अपने मन्त्रियों का सम्मान कर तथा अपने राजकीय कर्तव्य ग्रहण कर, एक पीड़ित प्रजा से सामना करते हैं और उनकी रक्षा के लिए कार्य करना है — वही भूमिका जिसकी वन्दीजनों ने भविष्यवाणी की थी। मैत्रेय से इतना सुनकर, विदुर ने उत्सुकता से और अधिक जानने का आग्रह किया: पृथ्वी गाय का रूप कैसे धारण कर सकती थी, और पृथु — जिन्होंने स्वयं महर्षि सनत्कुमार से दिव्य ज्ञान प्राप्त किया था — उसे कैसे दुहने में सफल हुए? इसी उत्सुकता को शान्त करने के लिए मैत्रेय अब आगे की कथा आरम्भ करते हैं।

भूखों की पुकार

दिव्य वन्दीजनों की स्तुति समाप्त होने पर, पृथु ने अपनी प्रजा के प्रत्येक वर्ग को — पुरोहितों, मन्त्रियों, तथा सामान्यजनों को समान रूप से — उपयुक्त उपहार देकर सम्मानित किया था, और सभी सन्तुष्ट होकर लौटे थे। इसके शीघ्र पश्चात्, अपना राज्याभिषेक पूर्ण होने तथा ब्राह्मणों द्वारा प्रजा-पालन का भार सौंपे जाने पर, भूमि पर एक भयंकर अकाल पड़ा, क्योंकि पृथ्वी कोई अन्न न दे रही थी। प्रजा, अपने शरीर भूख से क्षीण, राजा के समक्ष आई और उनसे याचना की।

मैत्रेय उवाच

यदाभिषिक्तः पृथुरङ्ग विप्रै-

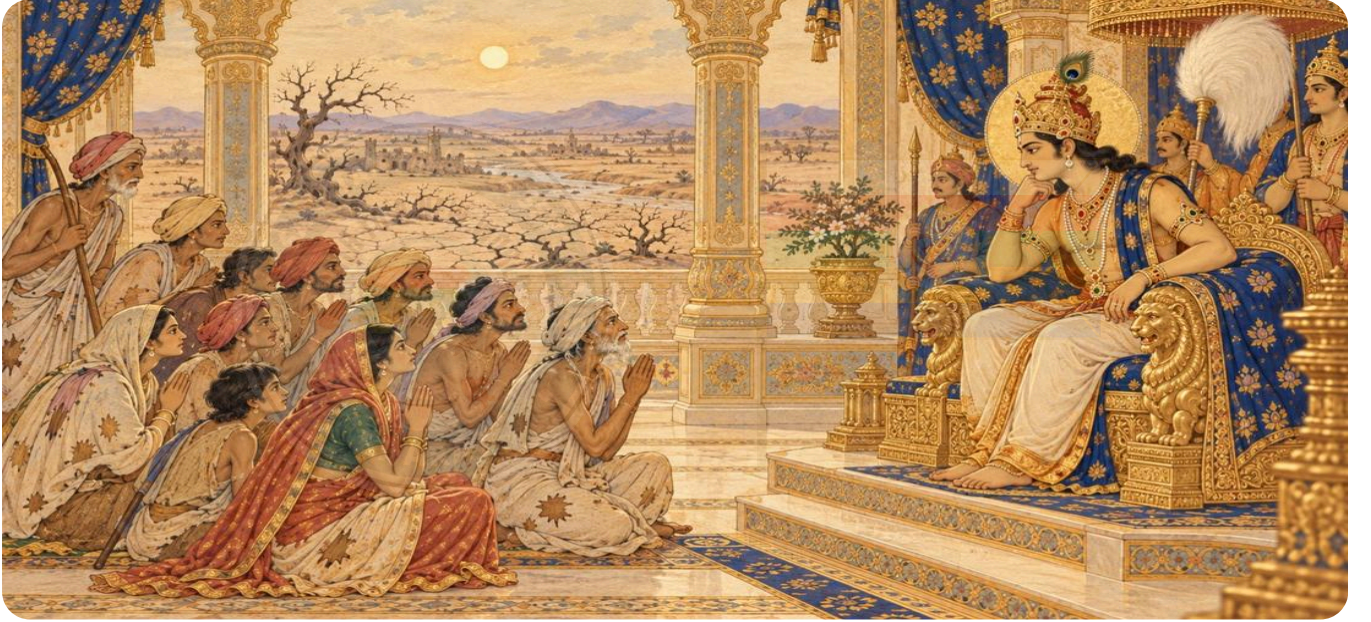
रामन्त्रितो जनतायाश्च पालः ।

प्रजा निरन्त्रे क्षितिपृष्ठ एत्य

क्षुत्क्षामदेहाः पतिमभ्यवोचन् ॥ ९ ॥

maitreya uvāca yadābhiṣiktaḥ pṛthur aṅga viprair āmantrito janatāyās ca pālaḥ prajā niranne kṣiti-pṛṣṭha etya kṣut-kṣāma-dehāḥ patim abhyavocan

अर्थ: मैत्रेय ने कहा: जब पृथु अभिषिक्त हुए और ब्राह्मणों द्वारा प्रजा की रक्षा का भार सौंपा गया, तब प्रजा, अपने शरीर भूख से क्षीण तथा भूमि पर कोई भोजन न पाकर, राजा के समक्ष आई और बोली। (स्कन्ध 4, अध्याय 17, श्लोक 9)



भूमि पर एक भयंकर अकाल पड़ता है, और भूखी प्रजा, अपने शरीर भूख से क्षीण, राजा पृथु के समक्ष राहत की याचना करने आती है (श्लोक 9-11)।

उन्होंने राजा से, अपने नियुक्त रक्षक से, विनती की कि वे उन्हें बचाएँ, क्योंकि भूख उन्हें अग्नि की भाँति भस्म कर रही थी। पृथु ने उनकी पुकार सुनी, और, दीर्घ चिन्तन के पश्चात्, कारण समझ गए: पृथ्वी देवी ने अपनी सम्पदा रोक ली थी, प्रत्येक पौधे के बीज अपने भीतर खींच लिए थे, ताकि कुछ न उगे।

राजा का क्रोध

अपनी भूखी प्रजा के लिए, पृथु अपनी सम्पदा रोकने पर पृथ्वी पर क्रुद्ध हुए। उसे विवश करने के दृढ़ निश्चय से, उन्होंने अपना महान् धनुष उठाया तथा उस पर बाण चढ़ाया, ठीक वैसे ही जैसे भगवान् शिव क्रोध में संसार को नष्ट करने अपना धनुष उठाते हैं।



अपनी भूखी प्रजा के लिए, राजा पृथु अपना महान् धनुष उठाते हैं और, धर्मयुक्त क्रोध में, पृथ्वी देवी को प्रत्येक ओषधि तथा अन्न के बीज अपने भीतर बन्द करने के लिए फटकारते हैं (श्लोक 22-26)।

पृथ्वी गोरूप में भागती है

राजा का धनुष अपनी ओर तना देखकर, पृथ्वी देवी भय से अभिभूत हो गई। उसने गाय का रूप धारण किया और भाग चली, स्वर्ग तथा समस्त दिशाओं में भय से दौड़ती हुई; क्रोध से लाल नेत्रों वाले पृथु ने अपना बाण चढ़ाया और जहाँ भी वह गई वहाँ उसका पीछा किया, और समस्त लोकों में उसे उनसे कोई शरण न मिली।



राजा के क्रोध से भयभीत होकर, पृथ्वी देवी गाय का रूप धारण कर लोकों के पार भागती है, किन्तु पीछा करते पृथु से कोई शरण नहीं पाती (श्लोक 27-30)।

अन्ततः घिर कर, काँपती हुई गाय पीछे मुड़ी और अपने प्राणों की भीख माँगी। उसने कहा कि वह किसी भी दोष से निर्दोष है, केवल शरण चाहती एक निर्धन स्त्री है — धर्म के ज्ञाता, शरणागत की रक्षा की शपथ लिए हुए, उसे मारना क्यों चाहते हैं? यहाँ तक कि पापिनी स्त्री पर भी हाथ उठाना उचित नहीं, उसने उन्हें स्मरण कराया; और इसके अतिरिक्त, वह सम्पूर्ण संसार को धारण करने वाले एक विशाल पात्र के समान थी, अतः यदि वे उसे टुकड़े-टुकड़े कर दें, तो वे तथा उनकी प्रजा दोनों के पास खड़े होने को कोई स्थान न रहेगा (श्लोक 18-21)।

पृथु उसकी विनती से विचलित न हुए।

पृथुरुवाच

वसुधे त्वां वधिष्यामि मच्छासनपराङ्मुखीम् ।

भागं बर्हिषि या वृङ्क्ते न तनोति च नो वसु ॥ २२ ॥

pr̥thur uvāca vasudhe tvām vadhiṣyāmi mac-chāsana-parāṇ-mukhīm bhāgaṁ barhiṣi yā vṛṅkte na tanoti ca no vasu

अर्थ: पृथु ने कहा: हे पृथ्वी, मैं तुझे मार डालूँगा — तू जो मेरी आज्ञा से मुँह मोड़ती है, जो यज्ञ में अपना भाग लेती है फिर भी हमें कोई अन्न नहीं देती। (स्कन्ध 4, अध्याय 17, श्लोक 22)

उन्होंने उसे और फटकारा — कि वह मूढ़तावश उनकी बात नहीं मानती और ब्रह्मा द्वारा प्राचीन काल में रचे गए ओषधि-बीजों को अपने भीतर से मुक्त नहीं करती, जिन्हें उसने बलपूर्वक रोक रखा है।

त्वं खल्वोषधिबीजानि प्राक् सृष्टानि स्वयम्भुवा ।

न मुञ्चस्यात्मरुद्धानि मामवज्ञाय मन्दधीः ॥ २४ ॥

tvām khalv oṣadhi-bijāni prāk sṛṣṭāni svayambhuvā na muñcasy ātma-ruddhāni mām avajñāya manda-dhīḥ

अर्थ: मन्दबुद्धि, तू मेरी अवज्ञा करती है और ब्रह्मा द्वारा प्राचीन काल में रचे तथा अब अपने भीतर बन्द ओषधियों तथा अन्नों के बीज नहीं छोड़ती। (स्कन्ध 4, अध्याय 17, श्लोक 24)

उनकी फटकार यहीं समाप्त न हुई: उन्होंने प्रतिज्ञा की कि वे उसे अपने बाणों से टुकड़े-टुकड़े कर देंगे तथा उसका मांस अपनी भूखी प्रजा को खिलाएँगे, यह घोषणा करते हुए कि जो कोई — चाहे किसी भी पद या रूप से सुरक्षित हो — केवल स्वार्थ के लिए संचय करता है और पीड़ित प्राणियों के प्रति करुणा नहीं दिखाता, उसे राजा द्वारा उचित रूप से दण्डित किया जा सकता है, और ऐसा वध वास्तव में वध नहीं है; तथा उन्हें उसकी सहायता की कोई आवश्यकता भी नहीं, क्योंकि वे अपनी ही भगवत्प्रदत्त शक्ति से प्रत्येक प्राणी का भरण-पोषण कर सकते हैं (श्लोक 25-27)। इस पर उनका क्रोध चरम पर पहुँच गया, उनका सम्पूर्ण अस्तित्व यमराज के समान, मृत्यु के स्वामी के समान, प्रज्वलित हो उठा, और पृथ्वी, उनके समक्ष काँपती हुई, अन्ततः पूर्णतः समर्पित हो गई और प्रार्थना करने को हाथ जोड़ लिए।

पृथ्वी की प्रार्थना

अन्ततः, कोई बचाव तथा उसी राजा के अतिरिक्त कोई रक्षक न पाकर जिसका उसने अपकार किया था, काँपती गोरूप पृथ्वी पृथु का सामना करने मुड़ी, और, उनमें स्वयं परम भगवान् की शक्ति पहचानकर, उसने विनम्रता से हृदय मोड़ा और प्रार्थना करने लगी। उसने उस परम पुरुष, विधाता को प्रणाम किया, जो अपनी शक्तियों — द्रव्य, क्रिया, कारक, तथा चेतना की — से संसार की सृष्टि तथा प्रलय को गति देते हैं, अपनी शक्ति को कभी उन्मुक्त कभी निरुद्ध करते हुए।

सर्गादि योऽस्यानुरुणद्धि शक्तिभि-
द्रव्यक्रियाकारकचेतनात्मभिः ।
तस्मै समुन्नद्धनिरुद्धशक्तये
नमः परस्मै पुरुषाय वेधसे ॥ ३३ ॥

sargādi yo 'syānuruṇaddhi śaktibhir dravya-kriyā-kāraka-cetanātmabhiḥ tasmai samunnaddha-niruddha-śaktaye namaḥ parasmai puruṣāya vedhase

अर्थ: (पृथ्वी ने प्रार्थना की:) जो अपनी द्रव्य, क्रिया, कारक, तथा चेतना की शक्तियों से इस संसार की सृष्टि तथा प्रलय को गति देते हैं, जिनकी शक्ति कभी उन्मुक्त कभी निरुद्ध होती है — उस परम पुरुष, विधाता को, मैं प्रणाम करती हूँ। (स्कन्ध 4, अध्याय 17, श्लोक 33)

उसने अपने ही इतिहास से एक और गहरा आश्चर्य स्मरण किया। युगों पूर्व, जब वह प्रलय के जल में डूबी हुई थी, तब इसी भगवान् ने महान् वराह के रूप में अवतार लेकर उसे अपने दाँतों पर उठाया था, जिसके कारण उनका नाम सदा के लिए धराधर — पृथ्वी को धारण करने वाला — गाया गया; किन्तु अब, इसी वीर राजा के रूप में, वे अपने बाणों से उसे टुकड़े-टुकड़े करने को तत्पर खड़े थे। माया से धुँधली दृष्टि को यह विशुद्ध विरोधाभास प्रतीत होता है, रक्षक ही मानो विनाशक बन गया; किन्तु पृथ्वी समझ गई कि भगवान् का, या उनके द्वारा सम्पन्न किसी का, कोई भी एक कर्म कभी अकेला नहीं होता। प्रत्येक एक अखण्ड, कल्याणकारी योजना का धागा है, ताकि उनकी प्रतीत होती कठोरता भी उसी विधान का दूसरा मुख हो जिसने कभी उसे उस गहराई से उठाया था (श्लोक 34-35)।

उसने स्वीकार किया कि उसके जैसे प्राणी, ईश्वर की अपनी लीलाओं से चित्त भ्रमित होने के कारण, बड़े जनों की करनी को समझ नहीं पाते, और उन वीरों को प्रणाम किया जिनके कृत्य संसार में यश फैलाते हैं।

नूनं जनैरीहितमीश्वराणा-
मस्मद्विधैस्तद्रुणसर्गमायया ।
न ज्ञायते मोहितचित्तवर्त्मभि-
स्तेभ्यो नमो वीरयशस्करेभ्यः ॥ ३६ ॥

nūnaṁ janair ihitam īśvarāṇām asmad-vidhais tad-guṇa-sarga-māyayā na jñāyate mohita-citta-vartmabhis tebhyo namo vīra-yaśas-karebhyah

अर्थ: सचमुच, मेरे जैसे प्राणी, भगवान् के गुणों की लीला से मन भ्रमित, महान् जनों के कर्मों को नहीं समझ सकते; जिनके कर्म वीरता की कीर्ति फैलाते हैं, उन्हें मैं प्रणाम करती हूँ। (स्कन्ध 4, अध्याय 17, श्लोक 36)



कोई शरण न पाकर, गोरूप पृथ्वी मुड़ती है, प्रणाम करती है, और राजा पृथु को स्वयं परम भगवान् के रूप में स्तुत करती है, उनके प्रति समर्पण करते हुए तथा यह समझाने को उद्यत कि उसने अपनी सम्पदा क्यों रोकी (श्लोक 31-36)।

इस प्रकार उनकी स्तुति करके, पृथ्वी राजा के समक्ष अपना पक्ष रखने को उद्यत हुई — यह कबूल करने कि उसने अपने उपहार क्यों रोके, और यह प्रस्ताव देने कि यदि केवल उसे उचित साधन दिया जाए तो वह पुनः अपना धन देगी। इस प्रकार सप्तदश अध्याय उस मेल-मिलाप की देहरी पर समाप्त होता है, जिसे अगला अध्याय पूर्ण करेगा, जब पृथु पृथ्वी की सम्पदा को बल से नहीं बल्कि उचित व्यवस्था से खींचना सीखते हैं।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. सच्चे शासक का क्रोध पीड़ितों के लिए जागता है, अपने लिए नहीं। पृथु का क्रोध उनके अभिमान के अपमान पर नहीं बल्कि अपनी प्रजा की भूख पर उठता है। धर्मयुक्त क्रोध करुणा का सेवक है, कभी अहंकार का नहीं (श्लोक 9-22)।
2. रोकी गई सम्पदा उत्तरदायित्व का आह्वान है। अकाल अन्धा दुर्भाग्य नहीं; पृथ्वी ने एक कारण से अपनी सम्पदा रोकी है। जब आशीर्वादों का प्रवाह रुकता है, तो यह इस परीक्षण का आह्वान हो सकता है कि उनका उपयोग कैसे हो रहा है (श्लोक 24)।
3. पृथ्वी भी धर्ममय अधिकार के समक्ष समर्पण करती है। पृथ्वी देवी राजा की शक्ति से भागती है, दया की भीख माँगती है, और फिर भी तब तक कोई शरण नहीं पाती जब तक वह पूर्णतः उन्हें प्रणाम नहीं करती। उचित, भगवान्-सम्पन्न अधिकार की अवज्ञा नहीं की जानी चाहिए (श्लोक 14-28)।
4. बुद्धिमान् तब प्रार्थना की ओर मुड़ते हैं जब वे और नहीं भाग सकते। घिरी हुई, पृथ्वी निराश नहीं होती बल्कि उस भगवान् की स्तुति करती है जिन्हें वह राजा में देखती है। जब पलायन विफल होता है, तब समर्पण तथा प्रार्थना ही एकमात्र सच्चा मार्ग खोलते हैं (श्लोक 33-36)।

5. महानतम कर्म हमारी समझ से परे हैं। पृथ्वी कबूल करती है कि माया से भ्रमित प्राणी भगवान् के सम्पन्न जनों के कर्मों को नहीं समझ सकते। जिसे हम नहीं समझ सकते उसके समक्ष विनम्रता स्वयं विवेक का एक रूप है (श्लोक 36)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

पिछले अध्याय के कोमल, विनम्र पृथु को यहाँ क्रोध में धनुष उठाते देखना चौंकाने वाला हो सकता है। किन्तु दोनों चित्र साथ हैं, और उनका मिलन ही सम्पूर्ण अभिप्राय है। वही राजा जो अयोग्य स्तुति स्वीकार न करेगा, अपनी प्रजा की अयोग्य पीड़ा भी स्वीकार न करेगा; अपने प्रति उनकी विनम्रता तथा उनके लिए उनकी उग्रता एक ही मूल से उपजती है — एक हृदय जो स्वयं पर केन्द्रित नहीं। यही पवित्र क्रोध का स्वरूप है, इतना दुर्लभ तथा इतनी सहजता से नकली। हमारा अधिकांश क्रोध अपने लिए भड़कता है: हमारा अपमानित अभिमान, हमारी बाधित इच्छा। पृथु का भूखों के लिए भड़कता है, और जिस क्षण पृथ्वी समर्पण करती तथा आगे का मार्ग देती है, उनका धनुष झुकने को तैयार है। अध्याय के समाप्त होने के ढंग में और भी सौन्दर्य है। पृथ्वी केवल पराजित नहीं होती; वह प्रार्थना तक लाई जाती है, और अपनी प्रार्थना में वह कबूल करती है कि भगवान् के सम्पन्न जनों के कर्म उसकी समझ से परे हैं। कभी-कभी हम भी अपने जीवन में एक ऐसी शक्ति से मिलते हैं जिससे हम न भाग सकते न समझ सकते — और अध्याय चुपचाप परामर्श देता है कि बुद्धिमान् प्रतिक्रिया अनन्त भागना नहीं, बल्कि हृदय का स्तुति की ओर मुड़ना है, यह विश्वास करते हुए कि जो हम नहीं समझ सकते वह फिर भी धर्ममय हाथों में है।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, अपने क्रोध तथा अपनी सम्पन्नता का परीक्षण करें। पहले, अगली बार जब आप में क्रोध उठे तो ध्यान दें, और कोमलता से पूछें: क्या यह अपने लिए है, या किसी के लिए जो पीड़ित है? पृथु के उदाहरण को अपनी अग्नि को अपने आहत अभिमान से दूर और दूसरों की आवश्यकताओं के प्रति सच्ची करुणा की ओर खींचने दें। दूसरे, अपने पास सौंपी “सम्पदा” पर विचार करें — अपना समय, साधन, या उपहार — और पूछें कि क्या, पृथ्वी की भाँति, आपने उसमें से कुछ बन्द कर रखा है जो बाँटा जाना था; फिर आज उसमें से थोड़ा सेवा में छोड़ें, उस कर्म को इन शब्दों के साथ भगवान् को अर्पित करते हुए — “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय”। और जब आप अपने जीवन में किसी ऐसी वस्तु से मिलें जिससे आप न बच सकते न समझ सकते, तो पृथ्वी का परामर्श लें: भागना बन्द करें, मुड़ें, और प्रार्थना करें, जिन कर्मों को आप नहीं समझ सकते उन्हें उन धर्ममय हाथों को सौंपते हुए जो उन्हें धारण करते हैं।

उपसंहार

चतुर्थ स्कन्ध का सप्तदश अध्याय राजा पृथु को अपनी प्रजा की रक्षा का कठोर कार्य उठाते दिखाता है। भूमि पर एक भयंकर अकाल पड़ता है: माता पृथ्वी ने अपना धन खींच लिया है, प्रत्येक ओषधि तथा अन्न का बीज अपने भीतर बन्द कर लिया है, और भूखी प्रजा सहायता के लिए अपने राजा के पास आती है। उनके लिए पृथु क्रुद्ध होते हैं, अपना धनुष उठाते हैं, और जब वह गाय के रूप में समस्त लोकों के पार भागती है तब उसका पीछा करते हैं। घिर जाने पर, वह पहले दया की भीख माँगती है, किन्तु पृथु, विचलित हुए बिना, अपनी फटकार जारी रखते हैं और उसे पूर्णतः नष्ट करने की धमकी देते हैं, यहाँ तक कि, मृत्यु के समान प्रज्वलित होकर, वे उसका प्रतिरोध पूर्णतः तोड़ देते हैं। अन्ततः वह पूर्ण रूप से उनकी ओर मुड़ती है, और, उनमें परम भगवान् की शक्ति पहचानकर, प्रणाम करती है और समर्पण की एक सुन्दर प्रार्थना अर्पित करती है, यह कबूल करते हुए कि उसके जैसे प्राणी महान् जनों के कर्मों को नहीं समझ सकते — तब भी जब, जैसे उनके अपने उद्धार तथा अब उसके विनाश

की धमकी में, ऐसे कर्म परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं। इस प्रकार अध्याय मेल-मिलाप की देहरी पर समाप्त होता है, जैसे पृथ्वी अपना पक्ष रखने तथा पुनः अपना धन देने को उद्यत होती है — यह सिखाते हुए कि शासक का क्रोध तभी पवित्र है जब वह पीड़ितों के लिए जागे, और कि पृथ्वी भी अपना धन उचित व्यवस्था से देती है, बल के भय से नहीं।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति को जागृत करे।

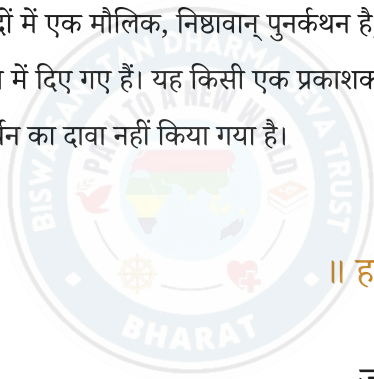
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ तथा आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, पूर्ण), चतुर्थ स्कन्ध, सप्तदश अध्याय।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़डम • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठावान् पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिखाए गए हैं और उनके अर्थ सारांश के रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी भी प्रकाशक द्वारा किसी सम्बद्धता या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।



॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-4-chapter-17-king-prithus-anger-with-the-earth-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज़डम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट